इकाई 25 धार्मिक राजनीति

संरचना

25.1 प्रस्तावना

25.2 धार्मिक राजनीति का अर्थ एवं महत्व

25.2.1 धार्मिक राजनीति : विविध दृष्टिकोण

25.3 धार्मिक राजनीति का विकास

25.4 हिन्दू पुनर्जागरणवाद

25.4.1 राजनीतिक अंसतोष में बढ़ोतरी

25.5 इस्लामिया दृष्टिकोण

25.6 धार्मिक राजनीति : एक पर्यवेक्षण

25.7 सारांश

25.8 अभ्यास प्रश्न

25.1 प्रस्तावना

धार्मिक राजनीति की अवधारणा धर्म और राजनीति से संबंधित है। मौटे तौर पर इसमें धर्म, संस्कृति, परम्पराएं, आधुनिकता, राष्ट्र, मानव संबंध, स्व और अन्य, इत्यादि की अवधारणाएँ शामिल होती हैं। यह धर्म की राष्ट्रीय आंदोलन में भूमिका, तथा विभिन्न राष्ट्र आंदोलनों की तुलना से भी संबंधित है। वास्तव में अन्य कारकों जैसे जाति, भाषा, लिंग, जेंडर, क्षेत्र, इत्यादि के प्रकार धर्म राजनीति तथा मानव जीवन को प्रभावित करने वाला एक कारक है। इस अवधारणा ने समसामयिक भारत में एक अतिशयोक्तिपूर्ण महत्व अर्जित कर लिया है। यद्यपि धर्म एवं राजनीति दो भिन्न संकल्पनाएँ मानी जाती हैं, पारम्परिक समाज में उनका एक संश्लिष्ट अस्तित्व है और आधुनिक समाज में वे एक-दूसरे को प्रभावित करने में लगी हैं। एक साथ लिए जाने पर वे एक-दूसरे पर एक गहरा प्रभाव डालने हेतु असीम संभावना रखती है। मानवजाति की सामाजिक प्रक्रिया को प्रभावित करने में धर्म एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और ऐसा विलोमतः भी सत्य हैं। जन संघटन में यह एक महत्वपूर्ण कारक रहा है, न सिर्फ़ राष्ट्रीय आन्दोलनों के दौरान बल्कि आधुनिकता की ओर अभिमुख अल्पकालिक चरणों में भी। भारत जैसे लोकतांत्रिक राज्य में, धर्म परम्परागत समाज के सारभाग का निर्माण करता है और जनमानस पर अपने प्रभाव का उपयोग जारी रखे हुए है। इसके प्रभाव में आकर जन मानस अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान, अपने इतिहास तथा विभिन्न धर्मों के बीच अंतरों के विषय में अपनी धारणा बनाते हैं। प्रायः विभिन्न समुदायों के बीच संघर्ष को प्रवृत्त करते हुए यह घनिष्ट संबंध सामाजिक असामंजस्य एवं अनैक्य में भी परिणत होता है। धार्मिक संगठन राजनीतिक समूहों से अन्तक्रिर्या करते है और जनता के किसी वर्ग विशेष पर अधिकार जताते हुए अपने समर्थनाधारों को बढ़ाने का प्रयास करते हैं। यह भारत तक ही सीमित नहीं है; ऐसा विभिन्न देशों में होता है। विभिन्न धार्मिक समूहों का समर्थन अक्सर राजनीतिक राज्य प्रणाली की शक्ति को निर्धारित करता है। यह इकाई धार्मिक राजनीति की संकल्पना, तथा उससे जुड़े अनेक आयामों, जैसे हिन्दू पुनर्जागरणवाद व इस्लामिया पहलू, की पूरी जानकारी प्रस्तुत करती है। विशेषकर, यह इकाई धार्मिक राजनीति के अर्थ तथा उसकी महत्ता, और विकास, हिन्दू पुर्नजागरण, धार्मिक राजनीति के इस्लामिया दृष्टिकोण के बारे में है। इस इकाई के पढ़ने से आप धर्म की जीवन के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक आयामों में महत्ता की व्याख्या कर सकेंगे।

25.2 धार्मिक राजनीति का अर्थ एवं महत्व

धार्मिक राजनीति पर चर्चा करने से पहले, राजनीति का अर्थ तथा उसके क्षेत्र के विषय में जानना प्रासंगिक है। राजनीति केवल दलीय राजनीति तथा चुनाव तक सीमित नही होती है। यह एक बड़ी अवधारणा हैं। इसका संबंध स्वयं के अस्तित्व की अवधारणा की व्याख्या करने, राष्ट्र निर्माण, राष्ट्रीय आंदोलन में लामंबदी, औपनिवेश विरोधी आंदोलनों, तथा प्रतिनिधित्व से है। धार्मिक राजनीति का संबंध इस बात से है कि धर्म और राजनीति किस प्रकार एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। उन्नीसवीं सदी के नौवें दशक से भारतीय बुद्धीजीवी और सांस्कृतिक परम्पराओं पर भारत में बहुत सा साहित्य लिखा गया है। इस साहित्य की मुख्य विशेषताओं को आई.सी.एस.एस.आर. की राजनीति विज्ञान में इंडियन पॉलिटिकल थॉट पर सर्वे और अन्वेशन में छापा गया (वॉल्यूम 3, 2013ः अब से आई.सी.एस.एस.आर. सर्वे 2013)। विभिन्न विचारकों ने धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से धर्म, राष्ट्र की अवधारणा, भगवतगीता, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, प्रजातंत्र की अवधारणा की व्याख्या की है। धार्मिक राजनीति का अर्थ दो बातों में से एक हो सकता हैं। प्रथम, यह एक ऐसी स्थिति है जहाँ धर्म स्वयं राजनीतिक अभिव्यक्ति एवं राजनीति के उद्देश्य को स्पष्ट करने का आधार बन जाता है। यह धर्म स्वयं ही एक प्रकार की राजनीति बन जाता है, उदाहरण के लिए, राष्ट्रवाद को परिभाषित करने के लिए अथवा किसी राजनीतिक कार्य-योजना का प्रारूप तैयार करने के लिए धार्मिक परम्परा की पुर्नव्याख्या। इनमें अनेक भिन्नताएँ हो सकती हैं, जैसा कि हम आगे इस इकाई में पढ़ेगें। दूसरे, धार्मिक राजनीति एक शर्त भी होती है, जहाँ धर्म को लोगों के राजनीतिक संघटन हेतु आधार रूप में प्रयोग किया जाता है। संस्थाएँ अथवा पर्व एवं धर्म से जुड़ी अन्य बातें लोगों से राजनीतिक अपील करने का आधार बन जाती है। उदाहरण के लिए, लोगों की सियासी लामबन्दी हेतु मन्दिरों एवं मस्जिदों का प्रयोग अथवा गणेश पूजा जैसे किसी धार्मिक पर्व का प्रयोग धार्मिक राजनीति का एक अन्य रूप है। ये दोनों ही प्रकार की धार्मिक राजनीतियाँ हमारे समाज में बड़ी आम है। दरअसल, इनका इतिहास सौ साल से भी पुराना है परन्तु आज के जमाने में, इनको मुख्यधारा राजनीति का दर्जा प्राप्त है।

धर्म और राजनीति संबंधी संकल्पना का एक और संदर्भ है। यह इस समस्या की ओर इशारा करती है कि इन दोनों के बीच क्या संबंध होना चाहिए, यथा एक ओर धर्म और दूसरी ओर राजनीति के बीच। इसमें, अतएव, धर्मनिरपेक्षता और हम उससे किस प्रकार पूर्वाभिमुख हैं संबंधी प्रश्न भी भाामिल है। धर्म निरपेक्षता का अभिप्राय इस बात से है कि धर्म और राजनीति में किस प्रकार का संबंध है। कुछ लोगों का मानना है कि धर्म निरपेक्षता का अभिप्राय धर्म और राजनीति के मध्य दूरी से है, दूसरी और कुछ लोगों का मानना है कि धर्म और राजनीति को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। यह भी एक एक ऐसा विषय है जिस पर धार्मिक विचारक तथा नेतृत्व सोच विचार करते हैं। यदि हम धर्म निरपेक्षता को स्वीकार करते है, जैसा कि राष्ट्रीय आन्दोलन ने किया, तब प्रश्न उठता है कि कैसे और किस तरीके से राजनीति को स्वायत्त अथवा धर्म-मुक्त रखें; यह किसी प्रदत्त समाज, मान लीजिए हमारे ही समाज की भाँति, हेतु धर्मनिरपेक्षवाद के किसी रूप को विकसित करने का सवाल भी है। उपयुक्त दो नियत स्थितियाँ कभी एक जैसी नहीं होती। प्रोटैस्टैण्ट चर्चों के प्रचुरोद्भव वाले अमेरिका जैसी स्थिति में, धर्मनिरपेक्षवाद को भारत के मुकाबले एक भिन्न प्रकार के समस्या-समूह से निबटना होता है जहाँ हमारा समाज एक प्राचीन बहु-धार्मिक समाज है। अतः यह प्रश्न कि धर्म व राजनीति स्वयं को किस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, समाज-समाज में एवं समय-समय पर भिन्न-भिन्न होता है।

स्वतंत्रता के प्रथम 30 वर्षों में, राजनीति और धर्म के बीच संबंध अब से एक भिन्न प्रकार का था। धर्म राजनीति के लिए उपांतिक महत्व का था और राजनीति धर्म से स्वतः मुक्त थी। 1980 के दशक-मध्य से यह प्रभावशाली रूप से बदल गया है इस लिहाज से कि एक विचारधारा के रूप में हिन्दुत्व समाज

व राजनीति में और 1998 से सरकार में भी एक प्रभावी बल बन गया है। अतः सांवैधानिक आदर्शों की भाषा में धर्म व राजनीति के बीच संबंध को किस नज़र से देखा जाए संबंधी प्रश्न बदल चुका है। धर्मनिरपेक्षता, नागरिक अधिकार, नागरिकता, लोकतंत्र, आदि पर केन्द्रित विषय हिन्दुत्व से उस प्रकार के प्रत्युत्तर का आह्वान नहीं करते जैसा कि उनका आशय स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान था। स्पष्टता की खातिर इस भेद को स्थापित करके हम सिर्फ़ ऊपर परिभाषित धार्मिक राजनीति पर नज़र डालेंगे। चूँकि राजनीति एवं धर्म के बीच भेद एक प्रकार के राष्ट्रवाद और राजनीतिक अपीलों में जुड़ चुका है, अब हम देश में धार्मिक राजनीति का प्राधान्य पाते हैं।

25.2.1 धार्मिक राजनीति : विविध दृष्टिकोण

धार्मिक राजनीति, जैसा कि हमने देखा, राजनीति का वास्तविक अर्थ और कार्यसूची प्रदान करती है, यथा, राजनीति की विषयवस्तु किसी न किसी धर्म अथवा धार्मिक समुदाय द्वारा स्वयं निर्धारित की जाती है। यह केवल व्यक्ति विशेष की धार्मिक समुदाय में स्थान को ही परिभाषित नही करती है। यह इस विषय से संबंधित है कि विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच, किसी एक धार्मिक समुदाय में कैसे संबंध हो, तथा धार्मिक समुदायों में महिलाओं के अधिकारों की क्या स्थिति हो। इसी कारण, धार्मिक राजनीति सिर्फ़ उस धार्मिक समुदाय से संबंध रखने वालों को ही अच्छी लग सकती है। धार्मिक राजनीति एक ही साथ हिन्दुओं, मुसलमानों व ईसाइयों की राजनीति नहीं हो सकती। यह सिर्फ़ किसी एक अथवा दूसरे धर्म के अनुयायियों से संबंध रख सकती है या उन्हें अच्छी लग सकती है। वह राजनीति जो उस बात का पक्ष लेने का प्रयास करती है जिसको मुस्लिम पहचान माना जाता है अथवा वह राजनीति जो हिन्दुओं के लिए एक नई और भिन्न पहचान बनाने की दिशा में काम करती है, जाहिर तौर पर दूसरे समुदाय को अच्छी नहीं लग सकती है। यह बात तब भी रहती है जब वह अपने आप को राष्ट्रवाद के रूप में पेश करती है, मसलन हिन्दुत्व स्वयं को "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद" कहता है। सारतः यह बहुमतवादी धार्मिक राजनीति बन रहती है। एक दृष्टिकोण धार्मिक राजनीति को साम्प्रदायिक राजनीति के रूप में देखता है। यह दृष्टिकोण सिर्फ़ भारत में ही नहीं है। यह किसी अन्य देश में भी हो सकता है।

इससे पहले कि हम आगे बढ़ें, एक स्पष्टीकरण यहाँ आवश्यक है। कोई धर्माग्रह मात्र धार्मिक राजनीति की ओर प्रवृत्त नही करता। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति हिन्दू हो सकता है परन्तु हिन्दुत्व की व्याख्या अथवा अर्थ निर्णय जो वह स्वीकार करता है, ही राजनीति के तात्पर्य को निर्धारित करेगा। धार्मिक राजनीति, विभिन्न धर्मों के मध्य संबंधों तथा धर्म और राजनीति के मध्य संबंधों को लेकर विभिन्न विचारों में मत भेद हैं। चलिए, अपने हाल ही के इतिहास से एक उदाहरण लेते है। गाँधी और सावरकर दोनों ही यह मानते थे कि धर्म राजनीति को सूचित करे। परन्तु उनकी हिन्दू होने के अर्थ क्या है संबंधी व्याख्याएँ इतनी भिन्न थीं कि इसने राजनीति की दो बिल्कुल भिन्न संकल्पनाओं को जन्म दिया। गाँधीजी के विचार में आध्यात्मिक मूल्यों को राजनीति पर प्रभाव डालना चाहिए अन्यथा राजनीति निरूपाय हो जाएगी। उन्होंने राजनीति व धर्म, दोनों का एक अन्तभूर्त दृष्टिकोण अपनाया। गाँधी के पास नैतिक शक्ति थी क्योंकि उनमें इसको पारम्परिक श्रोतों से प्राप्त करने की क्षमता थी। थॉमस पेंथम ने गाँधी के ठोस प्रजातंत्र पर विचारों की पूर्ण स्वराज तथा राम राज्य की अवधारणाओं के माध्यम से चर्चा की है। गाँधी ने उदारवादी प्रजातंत्र की अवधारणा की आलोचना की थी जिसका संबंध, उनके अनुसार हिंसा से था। उन्होंने इसे एक ''पाखंडी व्यवस्था'' बताया था। गाँधी के अनुसार राजनीतिक सत्ता और स्वराज्य एक दूसरे से भिन्न हैंः स्वराज्य ही स्वतंत्रता होती है (पैंथम, आई.सी.एस.एस.आर. सर्वे, 2013, प्र. 233) उन्होंने, दरअसल, हिन्दू धर्म के अपने बहुत से मूल्यों को अर्जित किया। ईसाइसत व इस्लाम एवं अनेक भक्ति से संबंधित मूल्य भी उनके लिए एक समान रूप से प्रामाणिक स्त्रोत थे। राजनीति, उनके अनुसार, एक उद्धारक आस्थाओं का गठबंधन है। उन्होंने, इसी कारण, किसी भी धार्मिक पर्व अथवा सिद्धांत का प्रयोग राजनीतिक लामबन्दी हेतु नहीं किया यद्यपि उन्होंने अपनी शब्दावली का अच्छा-खासा

भाग भारतीय धार्मिक स्त्रोतों से प्राप्त किया था। इसकी तुलना में, सावरकर का सोचना था कि राजनीति के हिन्दू दृष्टिकोण का आधार आध्यात्मिक मूल्यों की बजाय प्रजाति एवं वंशक्रम, इतिहास एवं परम्परा, तथा हिन्दुओं की भूमि-पवित्रता (पुण्य भूमि) होना चाहिए। उनका विचार यह भी था कि केवल वही व्यक्ति जिनके धर्म का मूल भारत में हैं, ही राजनीति के इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर सकते हैं। अन्य लोग, जैसे मुस्लिम अथवा ईसाई, भारत के प्रति अपनी निष्ठा कभी नहीं रख सकते; दूसरे शब्दों में, ये दूसरे लोग भारत को अपनी पुण्य भूमि मान ही नहीं सकते। सावरकर ने इस हिन्दूकृत राजनीति को ही हिन्दुत्व नाम दिया। उनके लेखों की सभी मुख्य बातें इस नाम की ही पुस्तक में उपलब्ध हैं। यह धार्मिक राजनीति की कई अवधारणाओं में से एक अवधारणा है।

25.3 धार्मिक राजनीति का विकास

भारत में धार्मिक राजनीति का एक लम्बा इतिहास है, यह एक सम्पन्न वंशावली रखती है। धार्मिक राजनीति परिस्थिति के आधार पर दोनों अनन्य और सम्मिलित हो सकती है। बहुत विस्तृत बुद्धि –प्रसार वाले कुछ महान् धार्मिक विचारकों ने भी धार्मिक राजनीति के निर्माण में योगदान किया, हालाँकि वे इस प्रकार की राजनीति के अनुयायियों में वर्गीकृत नहीं है। धार्मिक पुनर्जागरणवाद का इतिहास, जो कि धार्मिक राजनीति निर्माण का मध्य मार्ग है, सौ वर्षों से भी अधिक पुराना है। 19वीं सदी के अंतिम दशकों के आसपास पुनर्जागरण भावनाओं पर आधारित राजनीति देशभर पर प्रभावी होती जा रही थी, खासकर बंगाल व महाराष्ट्र में जो उस समय तक समाज-सुधार आन्दोलनों के मुख्य केन्द्र थे। उन्नीसवीं सदी में राष्ट्रीय चेतना सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलनों के द्वारा ढ़ाली गई थी। ये आंदोलन प्रबद्ध व्यक्तियों द्वारा शुरू तथा प्रेरित हुए थे। इन व्यक्तियों ने धर्म और राजनीति के मध्य तथा व्यक्तियों अधिकारों और प्रजातंत्र के मध्य संबंधों, राष्ट्रवाद, इत्यादि पर विचार प्रतिपादित किए थे। पुनर्जागरणवाद पर आधारित राजनीति का यह नया मिज़ाज तेजी से उन सामाजिक आन्दोलनों का स्थान लेता जा रहा था जो हिन्दुत्व के भीतर अनेक प्रथाओं पर प्रश्न करने का प्रयास करते थे, जैसे बाल-विवाह, बलात् वैधव्य, महिलाओं को शिक्षा से इंकार, आदि। यह बात दिलचस्प है कि संसूचित सुधारों में से अधिकांश महिलाओं के लिए जीवन को अधिक जीने योग्य बनाते हुए, उनके प्रारब्ध से ही जुड़े थे। पुनर्जागरणवाद के उत्कर्ष और सुधार आन्दोलनों के अपकर्ष का एक उदाहरण था भारत के भिन्न-भिन्न भागों से विभिन्न समाज-सुधार आन्दोलनों के एक रक्षाछत्र संगठन के रूप में, रानाडे द्वारा आरम्भ नेशनल सोशल कॉन्फ्रेंस को मिला प्रतिपादन। इसका उद्देश्य था पूरे भारतवर्ष में सुधार आन्दोलन पर चर्चा करना और उसे अखिल भारतीय स्तर पर समन्वयन एवं प्रोत्साहन प्रदान करना। कांग्रेस के 1885 के पूना अधिवेशन में बालगंगाधर तिलक ने नेशनल सोशल कॉन्फ्रेंस की बैठकों पर प्रतिबन्ध लगा दिया और इसे अधुना लुप्त करने का प्रयास किया। तिलक के दृष्टिकोण में इस बदलाव पर उंगलियाँ उठीं क्योंकि आम रूझान को देखते हुए अब वह बदल चुके थे और समाज-सुधारों के खिलाफ उन्होंने एक स्पष्ट रूख अपना लिया था। जल्द ही तिलक ने सार्वजनिक गणेश पूजा को उपनिवेशवाद के खिलाफ जन-संघटन की एक मुख्य पद्धति के रूप में स्थापित कर दिया।

धर्म के समर्थन में हमारे समाज में पढ़ें-लिखे लोगों के बीच बदलते मिज़ाज का दूसरा उदाहरण था विवाह-योग्य आयु विधेयक (एज ऑव कॅन्सैंट बिल) के खिलाफ़ बहुत चीत्कारपूर्ण, यद्यपि अल्पकालिक, अभियान। इस विधेयक ने एक साधारणसा कदम उठाने का प्रस्ताव किया था कि लड़कियों के लिए विवाह-योग्य आयु को दस से बढ़ाकर बारह वर्ष कर दिया जाए। आज हम भौंचक्के रह जाएँगें यदि कोई व्यक्ति कुछ भी तर्क देकर इसका विरोध करे। परन्तु इसने तब जो विवाद उठाया यदि आज हम पीछे मुड़कर देखें तो चौका देने वाला है। बंकिमचन्द्र चटर्जी एवं बालगंगाधर तिलक जैसे गणमान्य विभूतियों एवं राष्ट्रवादियों तथा ऐसे ही दूसरे लोगों ने विरोध सहगान में स्वर मिलाया। तर्क यह था कि

विदेशी शासकों, अंग्रेजों, को हिन्दुओं की धार्मिक प्रथाओं में हस्तक्षेप का कोई अधिकार नहीं है। परन्तु इस तर्क में यह कभी स्पष्ट नहीं किया गया कि क्या लड़की का शिशु-विवाह हिन्दू प्रथा का एक आन्तरिक अभिलक्षण था अथवा तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित महज एक सामाजिक प्रथा। इसकी तुलना गाँधीजी के दृष्टिकोण से करें जब अंग्रजों ने अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु एक प्रस्ताव रखा था। उन्होंने अविरोधी रूप से 1933 व 1935 के बीच ब्रिटिश कार्रवाई का साथ दिया। 27 जनवरी 1935 केन्द्रीय विधायिका (Central Legislature) के कुछ सदस्यों को सम्बोधित करते हुए, गाँधी ने कहा था कि चाहे समूचा हिन्दू विचार समूह अस्पृश्यता की समाप्ति का विरोध करें, वे फिर भी केंद्रीय विधायिका को सलाह देंगे कि एक सेक्यूलर संस्था के रूप में विधायिका को किसी भी ऐसी रवैये को सहन नहीं करना चाहिए जो अस्पृश्यता की समाप्ति का विरोध करें। उनका विचार था कि धार्मिक मामलों में केवल अनुचित हस्तक्षेप से बचा जाना चाहिए। परन्तु इन्ही लोगों ने, जिन्होंने धर्म से संबंधित मामलों में हस्तक्षेप करने के विषय में अंग्रेजों का विरोध किया, गौ-वध पर प्रतिबंध की माँग की। मापदण्डों में कोई सुसंगति और एकरूपता इस लिहाज से नहीं थी कि औपनिवेशिक सरकार द्वारा प्रस्तावित विधायी कदमों का विरोध हो अथवा उनकी माँग हो। हिन्दू कट्टरपंथी समूह, जो अब प्रभावी हो रहे थे, सिर्फ़ हिन्दू धार्मिक भावनाओं की भाषा में बात करते थे।

आई.सी.एस.एस.आर. रिसर्च सर्वे इंडियन पॉलिटिकल थॉट (आई.सी.एस.एस.आर. सर्वे 2013, पे. 170) में यह रेखांकित किया गया है कि बंगाली बुद्धिजीवियों ने ''जैविक बौद्धिक हिस्टोरियाग्राफी'' को भारत की मूल प्राचीनता से जोड़ा है। उठते पुनर्जागरणवाद को अप्रत्याशित स्थानों से समर्थन मिला। विवेकानन्द जो विश्व धर्म संसद में अपने प्रदर्शन के बाद अत्यंत प्रसिद्ध हो गए थे, उन्हीं में से एक थे। विवेकानंद 19 वीं शताब्दी के सर्वाधिक प्रभावशाली विचारकों में से एक थे। वे भारत में सामाजिक ऊँच–नीच तथा धार्मिक विषमताओं के आलोचक थे। उन्होंने व्यक्तिगत नैतिकता तथा सामाजिक परिवर्तन पर जोर डाला। उनके अनुसार किसी राष्ट्र की महानता उसकी जनता पर निर्भर करती है, राज्य पर नही तथा व्यक्तियों की महानता और उनका व्यवहार धर्म द्वारा ढलता है। विवेकानंद के विचारों ने भारत में आध्यात्मिक चेतना को जगाया। उन्होंने रेखांकित किया कि एक सांस्कृतिक क्रान्ति भारत में फिर से परमांनद की स्थिति में ला सकती है। उन्होंने भारतीयों, विशेषकर नवयुवकों को, अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने का आह्वान किया। उन्होंने सुधार बनाम विकास व सेवा पर आधारित एक दिलचस्प तर्क प्रस्तुत किया। उन्होंने घोषणा की, कि "मैं सुधार में विश्वास नहीं रखता; मैं विकास में विश्वास रखता हूँ। मैं स्वयं को ईश्वर के स्थान पर रखने और हमारे समाज को यह आदेश देने की धृष्टता नहीं करता : 'तुम इस तरह चलो और उस तरह नहीं।' ..... इस अद्भुत राष्ट्रीय यन्त्र ने युगों-युगों काम लिया है; यह अद्भुत नदी हमारे सामने बह रही है। कौन जानता है और कहने की हिम्मत रखता है कि क्या यह अच्छी है और यह कैसे चलेगी ? (के.पी. करूणाकरण, रिलिजन एण्ड पॉलिटिकॅल अवेकनिंग इन इण्डिया, 1969 संशोधित संस्करण में परिशिष्ट के रूप में प्रस्तुत "ट्रेडीशन्स एण्ड सोशल रिफॉर्म" में।) उनके द्वारा अपनाया जाने वाला दृष्टिकोण यह था कि समाज-सुधार आन्दोलन अभिजात वर्गवादी और भारतीय परम्परा के अनुरूप थे। इस प्रकार के विचार भारत के अन्य भागों में भी व्यक्त किए गए। वास्तव में बंगाल में अन्य बहुत से विचारकों और नेतृत्व में बंकिम चंद्र चटर्जी, जिन्हें वंदे मातरम के लिए ख्याति प्राप्त थी, तथा महाराष्ट्र में तिलक बहुत महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी आवाज थे। उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद को एक नई तथा भिन्न पहचान दी थी।

इन सब बातों के भीतर घुसने का तात्पर्य यह दर्शाना है कि यद्यपि धार्मिक राजनीति का उदय क्षेत्र-क्षेत्र में भिन्न-भिन्न आधार लेकर हुआ था, इसने एक अचूक अन्य प्रकार की राजनीति के खिलाफ समरूप स्थिति ग्रहण कर ली थी जो राममोहन राय के समय में प्रबल रही। पहले ही राजनीति इस अभिशंसा द्वारा पहचानी जाती थी कि भारतीय समाज उन बुरी प्रथाओं को छोड़कर स्वयं ही अपने को

पुनर्जीवनयुक्त कर सकता है, जो हिन्दू समाज में अतिक्रमण कर आए हैं, और कि इनको विधान तथा कानूनन मंजूरी के बिना दूर नहीं किया जा सकता है। धार्मिक राजनीति उस अपील के स्थान पर भारतीय परम्परा एवं हिन्दू प्रथा के विभिन्न महत्वपूर्ण विचारों की रखती है।

25.4 हिन्दू पुनर्जागरणवाद

हिन्दू पुनर्जागरणवाद की कोई सर्वमान्य विषयवस्तु नहीं हैं। हिन्दू पुनर्जागरणवाद भारतीय परंपराओं की खोज तथा उनकी आध्यात्मिक श्रेष्ठता से संबंधित है। हिंदू पुनर्जागरणवाद के चिंतक तथा उसका नेतृत्व भारतीय संस्कृति की महिमा को हिंदुओं से संबंधित प्रतीकों, वेदों, भारतीय परपंराओं तथा भारत की आध्यात्मिक श्रेष्ठता के साथ जोड़कर देखते है। वे राष्ट्रवाद, अंतर-धार्मिक तथा अंतर-समुदायों के संबंधों में इन कारकों की भूमिका का संबंध रेखाकिंत करते हैं। यह व्यक्ति-व्यक्ति के साथ क्षेत्र-क्षेत्र के लिहाज से भी बहुत भिन्न-भिन्न थी। हिन्दू पुनरूत्थानवादी राष्ट्रीय जागरण को हिन्दू पुनरूत्थान के समान मानते हैं। जो हिन्दू एकता के विजन तथा एकता का प्रतीक है। उनके अनुसार ''सम्प्रदायों की विभिन्नता, सिद्धातों में कमजोरी, अहिंसात्मक स्रेण आध्यात्मविज्ञान, विदेशी आक्रमणकारियों के आसान शिकार बनना'' हिन्दुओं की समस्याओं के मुख्य कारण हैं (आई.सी.एस.एस.आर. सर्वे 2013, पृ. 243)। विदेशी हमलों का सामाना करने के उद्देश्य से उन्होंने हिन्दूवाद को सजातीय बनाने का प्रयत्न किया। उनके अनुसार एकीकृत हिन्दू पहचान अहिंसा अथवा कमजोर भावनाओं से मुक्त होगा (आई.सी.एस.एस.आर. सर्वे 2013, पृ. 243)। हम भारत में तीन क्षेत्रों पर नज़र डालेंगे जहाँ हिन्दू पुनर्जागरणवाद किसी न किसी रूप में उच्चरित हुआ – बंगाल, महाराष्ट्र एवं उत्तरी भारत, यथा तीन क्षेत्र जहाँ पुनर्जागरणवाद काफ़ी लम्बा चला।

बंगाल में यह सर्वाधिक व्यापक था, साथ ही प्रचण्ड भी, परन्तु इसने असाधरण रूप से एक असामान्य रूप ले लिया। यह एक बहुत, सुमित सरकार के शब्दों में, "बौद्धिकृत पुनर्जागरणवाद" में उभरा। इसका मतलब है कि इसने ऊँची भौं वाले, मूर्धन्य प्रकार के बुद्धिजीवियों के बीच बहस का रूप ले लिया। पढ़े-लिखे लोगों के बीच यह चर्चा का विषय था। जब भी पत्रिकाएँ एवं समाचार-पत्र इसमें लिप्त होते थे, उनकी अभिव्यक्ती ऐसी होती थी कि यह आम आदमी को कम ही अच्छा लगता था। बंगाल में बंकिमचंद्र चटर्जी हिन्दू पुनर्जागरणवाद के विचारकों में एक थे। बंगाल में हिन्दू पुनर्जागरणवाद की तीन मुख्य विशेषताएं थीं। प्रथम, इसने भारत की स्मरणातीत परम्पराओं को बढ़ाया तथा पश्चिम पर भारतीय आध्यात्मवाद की श्रेष्ठता के पक्ष तर्क दिया। दूसरी, इसने सवाल पूछा किः कौन (वास्तव में) भारतीय है? इसने बताया कि भारतीय वह जिसमें भारतीय संस्कृति की विशेषताएं हों। इसने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की बीज बोए। तीसरी, इसने जिसस क्राइस्ट (ईसा मसीह) की तुलना में भगवान कृष्ण की श्रेष्ठता को रेखांकित किया। बंकिमचंद्र के उपन्यास आनंदमठ ने देश भक्ति का संदेश फैलाया। वंदे मातरम जो आनंद मठ का एक अभिन्न अंग है, भारत का राष्ट्रीय गीत है।

महाराष्ट्र में धार्मिक पुनर्जागरणवाद का एक अधिक भिन्न आधार था। वहाँ निश्चित रूप से बुद्धिजीवी घटक विद्यमान था। धार्मिक प्रतीक-चिह्न एवं पर्व 'सार्वजनिक' बनाए गए आम अखाड़े में प्रेरित किए जाते थे ताकि राष्ट्रवाद के उद्देश्य से जन-समाज के संघटन पर प्रभाव पड़े। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध गणेश पूजा, अब तक एक घरेलू घटना, का 'गणेश उत्सव' के रूप में जाने जाने वाले एक जन समारोह में रूप-परिवर्तन हैं। उत्तरी भारत एक और अधिक दिलचस्प उत्पन्न करती तस्वीर प्रस्तुत करता है। यहाँ अधिकतर बुद्धि-संबंधी बहसें समाज में फैली और जनप्रिय संघर्ष-विषयों के मुद्दे बन गई और जो संघर्ष-विषय के मुद्दे बने उनमें से अधिकांश लोकप्रिय प्रथाओं व आस्थाओं के निकट थे। उत्तर भारत में दो भिन्न रूपान्तर उभरे। एक सिन्धु-गंगाई मैदानों में और दूसरा उत्तर-पश्चिमी भारत में, जो अब पंजाब,

हरियाणा व पश्चिमी उत्तर-प्रदेश है। सिन्धु-गंगाई मैदानों में वे मुद्दे थे जिनके माध्यम से हिन्दू पुनर्जागरणवाद ने अपना हक कायम किया, यथा गौ-वध तथा देवनागरी लिपि में हिन्दी से जुड़े मुद्दे। ज्ञान पाण्डेय ने "मोबिलाइजिंग दि हिन्दू कॅम्यूनिटि" तथा "हिन्दी, हिन्दू, हिन्दूस्तान" (उनकी कॅन्स्ट्रक्शन ऑव कॅम्यूनलिज़्म इन कॅलोनिअल नॉर्थ इण्डिया, 1990 में दोनों अध्याय 5 व 6 के रूप में) में दर्शाया है कि दैनिक जीवन में गाय और मुसलमानों द्वारा उसकी हत्या, और खासकर बकरीद के मौके पर, हिंदू और मुसलमानों की बीच दूरी के कारण बने। ये हिन्दुओं के गाय के वध के विरोध में लामबंदी का भी कारण बने। इसी तरीके से हिन्दी व देवनागरी, यथा फ़ारसी लिपि में उर्दू के विरोध का मुद्दा जनचेतना के तहत हिन्दू-मुस्लिम विवादों के विषय बन गए। उत्तर-पश्चिमी भारत में इस प्रकार के मुद्दे अन्य मुद्दों के साथ एक अलग तरीके से उठाए गए। यही था स्वामी दयानन्द के 'आर्य समाज' आन्दोलन का उदय और प्रसार। एक स्तर पर यह एक "आपत्तिकारक आन्दोलन" था परन्तु दूसरे स्तर पर यह हर उस चीज़ के खिलाफ एक निन्दात्मक प्रहार भी था जो उचित रूप से 'वेदों' से मेल न खाता हो। इसने सफलतापूर्वक अनेक हिन्दू प्रथाओं, जैसे बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, एवं जन्म पर आधारित जाति, पर एक तीखा प्रहार किया तथा अन्तर्जातीय एवं विधवा-पुनर्विवाह व अन्य ऐसी ही प्रथाओं की वकालत की। स्वामी दयानंद उन्नीसवीं सदी के समाज सुधारक थे जिन्होंने वेदों के ज्ञान को ख्याति दिलाई। दयानन्द ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' में गैर-वैदिक धर्मों जैसे इस्लाम, ईसाइयत, सिखधर्म, आदि प्रत्येक पर एक-एक अध्याय लिखते हुए, एक जोरदार प्रहार भी किया, और इस्लाम व उसके पैगम्बर पर प्रहार सर्वाधिक जोरदार था। उनके अनुयायी तदोपरांत सिखों व मुसलमानों, इस क्षेत्र के दो अन्य प्रमुख धर्मों, के साथ अनावश्यक शास्त्रार्थ में लग गए। कैनेथ जोन्स अपनी पुस्तक आर्यधर्म में दर्शाते है कि किस प्रकार यह आन्दोलन तेजी से पंजाब में, खासकर खत्री जैसी व्यापारी जातियों के बीच, फैल गया। प्रमुख धर्मान्तरित व्यक्ति थे लाला लाजपत राय (विख्यात् राष्ट्रवादी नेता), लाला हन्स राज, लाला मुन्शीराम (बाद में स्वामी श्रद्धानंद) व अन्य कई। तब से ही, उसने विशेष रूप से दो कार्यों पर ध्यान केन्द्रित किया – एंग्लों-वैदिक विद्यालय खोलना और एक 'शुद्धि' अभियान – उन लोगों का हिन्दू धर्म में फिर से धर्मान्तरण जिन्होंने अन्य धर्मों को अपना लिया था। यह परवर्ती कार्यक्रम जो मुसलमानों के बीच तंज़ीम और तबलीग कही जाने वाले कामों से तथा धार्मिक समुदायों के संबंधों में बदलाव में सहायक था, जुड़ा था।

25.4.1 राजनीतिक अंसतोष में बढ़ोतरी

धार्मिक पुनर्जागरणवाद व सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर आधारित प्रकट होती राजनीतिक खीज ने विवेकानन्द व अरबिन्दों जैसे अत्यंत सम्मानित व विवेकी विचारकों के लेखों से, एक अखिल भारतीय स्तर पर, सशक्त बौद्धिक प्रबलन व नैतिक वैधीकरण प्राप्त कर लिया। उनके विषय–क्षेत्र विशाल थे, क्षितिज बहुत व्यापक, और कार्य बहुत बड़ा। दोनों ही के अनुसार भारत के पास विश्व के लिए एक दूतकार्य है, भौतिकवादी पश्चिम को भारत के महान् आध्यात्मिक संसाधन उपलब्ध कराना और इस प्रकार अपनी दरिद्र सभ्यता को सम्पन्न बनाना। इस दूतकार्य के अन्तर्गत उन्होंने प्राचीन भारत के गौरव, भारतीय धर्म व दर्शन का स्मरणतीत्य, 'वेदान्त' की श्रेष्ठता, भारतीय सहिष्णुता की अनुपम प्रकृति, इत्यादि का स्तुतिपूर्वक आहवान किया। यह सब अब भी भली-भाँति चल सकता है। परन्तु तुलना करने की एक प्रवृत्ति विद्यमान है, खासकर अन्य धर्मों के साथ विवेकानन्द, हिन्दू-वेदान्तिक परम्परा में उच्चरित। वह हिन्दू सहिष्णुता की मुस्लिम "असहिष्णुता" के साथ तुलना करने और मुस्लिम धर्म की पूरे विश्व में मांसार्थ पशुवध से तुल्यता दिखाने, तथा इस्लाम के पैगम्बर को यह मानने के बड़े आदी थे कि उन्होंने विश्व की भलाई कम थी और हानि अधिक पहुँचाई (कॅलैक्टिड वर्क्स, खण्ड 1)।

ऊपर वर्णित हिन्दू परम्परा के भीतर व्याख्यात्मक परिवर्तन मुसलमानों के बीच भी प्रतिरूप रखते थे, हालाँकि ये एक भिन्न प्रकार थे। मुस्लिम धार्मिक सम्प्रदाय के भीतर परम्पराएँ नव-परम्परानिष्ठा एवं "आधुनिकतावादी" दोनों द्वारा हस्तक्षेपों तथा पुनर्क्रियाओं के अधीन थीं, ये दोनों ही बिल्कुल भिन्न कारणों को लेकर राष्ट्रीय विकासों से सम्प्रदाय को निकाल बाहर करने का प्रयास कर रहे थे। चाहे जो हो, ये हस्तक्षेप मुस्लिम सम्प्रदाय में अन्तर्विरोध बनाने में कामयाब रहे।

25.5 इस्लामिया दृष्टिकोण

मुसलमानों के बीच हस्तक्षेप, मोटे तौर पर 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध से आरम्भ, भी उनके लिए कोई एकरूप लक्षण नहीं रखता था। भारत में मुसलमानों के दृष्टिकोण से, इनमें से कुछ अधिकतर आदिम विविधताओं वाले पारम्परिक अथवा रूढ़िवादी इस्लाम में अवसर-ग्रहण को दर्शाते थे। बरेली के शाह वलीउल्लाह अथवा सय्यद अहमद तथा उनके कम जाने जाने वाले अनुयायी जैसे बंगाल में फरैज़िस के हाजी शरीयतुल्लाह अथवा फ़ैजाबाद के मौलवी अथवा जौनपुर के मौलवी करामत अली, सभी 19वीं सदी के पूर्वार्ध में, वहाबी आन्दोलन से प्रभावित थे। और उन्होंने अपना ध्यान मुसलमानों के बीच प्रचलित "अन-इस्लामिक" प्रथाओं पर केन्द्रित किया, जैसे एक-दूसरे के त्यौहारों में शरीक़ होने की लोक प्रथाएँ, अभिवादन एवं शुभकामनाओं के तरीके, आसपास के हिन्दू लोकाचार से प्रभावित आम रीतियाँ व शिष्टाचार, और सर्वोपरि, शिर्क (अन्य शक्तियों को अल्लाह के साथ जोड़ना) के रूप में संतों की पूजा, इत्यादि। वे मुसलमानों, खासकर नए धर्मान्तरितों का, अवशिष्ट हिन्दू प्रथाओं से उद्धार चाहते थे और उसके स्थान पर "बाह्य प्रभावों" से अदूषित इस्लाम का एक शोधित रूप लाना चाहते थे। हस्तक्षेप का दूसरा रूप बाद में 19वीं सदी के उत्तरार्ध में देखने में आया। इस दृष्टिकोण के सर्वोच्च प्रतिनिधि थे सर सैय्यद अहमद खान। वे अलीगढ़ आंदोलन के संस्थापक थे। यह आंदोलन अलीगढ़ आंदोलन के नाम से जाना गया क्योंकि यह अलीगढ़ में शुरू हुआ था। इस आंदोलन का उद्देश्य भारतीय मुसलमानों से राजनीतिक चेतना का प्रसार करना था। सर सैय्यद अहमद खान ने सन् 1875 में मोहम्मडन एंग्लों ऑरियंटल (MAO) कॉलिज की अलीगढ़ में स्थापना की थी। बाद में यह अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी (AMU) बन गया। अतीत की ओर किसी प्रत्यावर्तन और पैगम्बर मोहम्मद व उनके निकट सहयोगियों के युगोन्मुखक्षेपी व्याख्याओं' की बजाय, सर सैय्यद का दृष्टिकोण एक मुस्लिम सम्प्रदाय संबंधी था, ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ उठते संघर्ष से दूर रहकर तर्क व विज्ञान तथा आधुनिक युग की माँगों से सामंजस्य रखकर एक इस्लामिक अवधारणा के साथ तेजी से आधुनिकीकरण लाना।

भिन्नताएँ चाहे जो हों, जो कि ऐतिहासिक काल, आन्तरिक दबाव तथा अभिप्रायों अथवा प्रयोजनों के लिहाज से पहचानी जा सकती है, ऊपर से हस्तक्षेपों के कुछ सामान्य अभिलक्षण व परिणाम भी देखने में आते हैं। ज्यादा सुप्रकट अभिलक्षण हैं, प्रथम, इस्लाम की रक्षार्थ अदालत अथवा अभिजात-तंत्र पर भरोसा करने अथवा उससे गुहार करने की बजाय सीधे लोगों को सम्बोधित करने की दिशा में एक सुविचारित और सुनियोजित कार्रवाई। उदाहरण के लिए, स्वधर्मनिष्ठा ने औरंगजेब और दारा शिकोह के बीच संघर्ष में किया। कुछ ने सम्प्रदाय-विशेष में टिकाऊ संचार माध्यम उपलब्ध कराने के लिए मुस्लिम भद्रजन और छोटे तबके के मुसलमानों के बीच दरार पाटने का काम किया। दूसरे, इन हस्तक्षेपों ने राजनीतिक अपीलों हेतु पढ़े-लिखों को सम्बोधित धर्मतात्विक तर्कों के स्थान से हटकर व्यापक विषयों पर कुछ-कुछ लोगों की लामबन्दी का रूप लेने का प्रयास किया। तीसरे, इस्लाम को आधार मानकर उसकी एक "अधिक तर्कसंगत" व्याख्या के पुनर्निर्माण का सुसंगत प्रयास किया जा रहा था, जिस पर मुसलमानों को मिली नई पहचान कायम रह सके। यह समझना गलत नहीं हो सकता कि ये दो प्रवृत्तियाँ "परम्परावादी" एवं "आधुनिकतावादी" के रूप में इन हस्तक्षेपों के कारण ही उत्पन्न हुई। दिलचस्प रूप से, उन्होंने राष्ट्रवादी आन्दोलन की ओर पूरी तरह उल्टा रूख अपनाया ठीक जबकि

मुसलमानों को एक भिन्न सांस्कृतिक सम्प्रदाय के रूप में देखा जा रहा था। ''परम्परावादियों'' ने राष्ट्रीय आन्दोलन का समर्थन किया जबकि ''आधुनिकतावादियों'' ने मुसलमानों को स्वतंत्रता आन्दोलन से तटस्थ रहने की दलील दी।

इन सब बातों में शामिल विवादास्पद परिणाम गौरतलब है। जबकि ये घटनाएँ मुस्लिम समुदाय को धीरे-धीरे बाकी समाज से दूर खींच रहीं थीं, ये उन्हें धीरे-धीरे एक राष्ट्र के रूप में ऐसे सक्रिय भागीदारी के तौर पर जो अपनी बात सुनी जाने पर आमादा थे, जन रंगमंच पर भी ला रही थी। मुसलमानों का एक वर्ग स्वयं को हिन्दुओं से अलग करते हुए, सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में सक्रिय होते जा रहे थे। यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। यद्यपि, यह स्वयं में बँटवारे का कोई कारण नहीं था, जहाँ राजनीतिक चंगाई तथापि संभव थी, परन्तु यह फिर भी एक अंशदायी कारक बन गया।

25.6 धार्मिक राजनीति : एक पर्यवेक्षण

चलिए, ऊपर वर्णित हिन्दू सम्प्रदायों के बीच धार्मिक राजनीति के विषय पर वापस आते हैं। विभाजन के संकट के बाद, हम भारत में हैं जहाँ हिन्दू कुल जनसंख्या का सबसे बड़ा हिस्सा है, वहीं दूसरा बड़ा धार्मिक समुदाय मुसलमानों का है जो भारत की जन संख्या का अल्पसंख्यक समुदाय है। हिन्दुओं के बीच होने वाली घटनाएँ भारत के भवितव्यार्थ इसीलिए अन्य धार्मिक सम्प्रदायों के बीच होने वाली घटनाओं की बजाय अधिक मायने रखती हैं। ऊपर चर्चित अनेक घटनाओं एवं व्याख्यात्मक परिवर्तनों की, एक तीन या चार निष्कर्षों में सूक्ष्मदृष्टि हमारी वर्तमान राजनीति के समझने के लिए आवश्यक हैं।

इनमें प्रथम था हिन्दू समुदाय, धर्मशास्त्रीय समग्रता में संजोयी गई शिक्षाओं के एक निकाय, को ठीक उसी प्रकार जैसे अन्य धर्म हैं, अखंड एकता प्रदान करना। हिन्दुत्व को अस्थायी सीमाओं वाले एक धर्म बतौर किसी भी विपत्ति की सूरत में एक उत्तरदायित्व के रूप में देखा जाता था। दूसरे, हिन्दुत्व को मांसल बल प्रदान करने का एक संगठित प्रयास भी होता था। पुनर्जागरणवाद के आलोक में, सिर्फ़ गाँधीजी को छोड़कर, सभी धार्मिक विचारक यह महसूस करते थे कि हिन्दुत्व दुर्बल या निर्बल है और इसी कारण इस पर पहले मुसलमानों द्वारा बलपूर्वक अधिकार कर लिया गया और उसके बाद अंग्रेजों द्वारा उसे उपनिवेश बना लिया गया। इसको, इसीलिए, बलिष्ठ बनाने की आवश्यकता है। अन्यथा भारत पर बाहरी शक्तियों एवं आंतरिक शत्रु का खतरा मंडराता ही रहेगा। इस दृष्टिकोण ने ऐसे अनेक विचारकों को संगठित किया, जैसे बंकिमचंद्र, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती व अन्य कई। भारत की एकता व अखण्डता हिन्दुओं की एकता व बलिष्ठता में ही समझी गई। हिन्दू इतिहास को मुसलमानों के आगमन से पिछले हज़ारों वर्षों से भी अधिक से, पराज्यों व दुर्भाग्य की एक कथा के रूप में देखा गया। उससे पूर्व का काल था महान् उपलब्धि का काल, जो गौरवपूर्ण था। यह हर व्यक्ति का ही कर्त्तव्य है, तीसरा अभिलक्षण प्रस्तुत है, जिसने हर व्यक्ति को इन विचारकों से जोड़ा, कि उस सुनहरे युग को फिर से लाए। सिर्फ़ इसे लाने के उनके साधनों में फ़र्क था। रणनीतिक रूप से वे एक थे परन्तु सामरिक रूप से बहुत अधिक भिन्न।

पुनर्जागरणवादी विचार में निहित अन्तिम महत्वपूर्ण लक्षण था हिन्दुत्व के उन अभिलक्षणों की गहरी आशंका जो अन्य कई विवेकी हिन्दुओं, जैसे गाँधी अथवा टैगोर उदाहरणार्थ, के अनुसार हिन्दुत्व की सुन्दरता व शक्ति थे। उसकी अपनी विविधता और प्रवर्तनकारी वैविध्य को उत्पन्न करने की क्षमता ही काफ़ी थी। किसी अन्य धर्म के पास इतना सामर्थ्य नही था। उपर्युक्त विचारकों व आन्दोलनों, जिन पर हमने पहले विचार किया, का हिन्दुत्व संबंधी इस नैतिक गुण विशेष के विषय में गहरा अविश्वास था। वे इसीलिए स्थानीय मतभेदों, क्षेत्रीय, विसामान्यताओं, निगूढ़ पूजा-पद्धतियों, अथवा 'भक्ति' आन्दोलनों के

प्रति संदिग्धचित्त थे। इनको दुर्बलीकारक के रूप में देखा जाता था और इसीलिए इनसे परहेज़ और लड़कर तय किया जाना था।

25.7 सारांश

इस इकाई में आपने धार्मिक राजनीति के अर्थ व महत्व तथा उसके दृष्टिकोणों का अध्ययन किया है। धार्मिक राजनीति के क्षेत्र में मौटे तौर पर धर्म, संस्कृति, परम्पराएं, आधुनिकता, राष्ट्र, मानव संबंध इत्यादि आते हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में, विचारकों और नेता गणों ने धार्मिक राजनीति पर विचारों को प्रतिपादित किया था। भारत में धार्मिक राजनीति 19वीं भाताब्दी के अन्तिम दशकों से धीरे-धीरे राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठ भूमि में जन्मी। इसका आरम्भ सामाजिक सुधारों के साथ किया गया और उसने तदोपरांत विद्वानों व राष्ट्रवादियों का एक-सा ही समर्थन पाया, यद्यपि उनके तरीके महत्वपूर्ण रूप से भिन्न थे। इस समय भारत में हिंदू पुनर्जागरणवाद को बढ़ावा मिला। हिंदू पुनर्जागरणवाद की विशेषताओं में सामान्य तौर पर भारतीय संस्कृति की ख्याति को हिंदू समुदाय संबंधित संकेतों, वेदों, भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता के साथ जोड़ना आते हैं। हिन्दू पुनर्जागरणवाद ने अपनी जड़ें बंगाल, महाराष्ट्र और उत्तर-भारतीय क्षेत्र में जमायी। राष्ट्रवादी नेताओं ने अपनी प्रेरणाएँ धार्मिक प्रतिमाओं व पूजा-पद्धतियों एवं वेदों से प्राप्त की; उन्होंने अपनी-अपनी आस्थाओं से संबधित सुधारों व कर्मकाण्ड़ों की वकालत करते हुए अपने-अपने समुदायों की भावनाओं को प्रभावित किया। इस्लामिक पहलू ने अपने स्त्रोत इतिहास के अतीत में ढूढ़कर मुस्लिम समाज को एक समूह में जोड़ने की कोशिश की। जिसमें इस्लाम को एक मजबूत दृष्टिकोण प्रदान करने का प्रयास किया गया। धीरे-धीरे इन मतभेदों ने विवादास्पद पहलुओं की ओर प्रवृत्त किया; तिस पर भी धार्मिक समुदायों ने एक प्रमुख भूमिका निभानी शुरू कर दी है, जिससे धार्मिक राजनीति का मसला एक सतत दृश्यघटना बनता जा रहा है।

25.8 अभ्यास प्रश्न

1) धर्म व राजनीति के विषय से धार्मिक राजनीति किस प्रकार भिन्न है?
2) धार्मिक राजनीति के सारभाग को स्पष्ट करें।
3) धार्मिक राजनीति के विकास पर चर्चा करें।
4) हिन्दू पुनर्जागरणवाद से आप क्या समझते हैं?
5) धार्मिक राजनीति के इस्लामिक दृष्टिकोण पर एक टिप्पणी लिखें।
6) राष्ट्रीय आंदोलन के लांमबद में धर्म की क्या महत्ता होती है?